22 मैं कृतिका नाडिग हूँ

कृतिका नाडिग

भारतीय परिवेश में पेशेवर खेल और स्कूल की पढ़ाई की गलबहियाँ विरले ही दिखती हैं। अधिकांश स्कूल अपने छात्रों को अन्तर–विद्यालय शील्ड और ट्रॉफियाँ जीत कर लाता देख खुश तो होते हैं, लेकिन यह खुशी और उत्साह अक्सर बस यहीं खत्म हो जाता है। एक ऐसी अंक–केन्द्रित व्यवस्था से, जिसमें हमारी सी.वी. पर दी गई पाठ्येतर उपलब्धियों की कोई अहमियत ही न हो, भला आप और क्या उम्मीद कर सकते हैं!

शुरुआत में, एक नातजुर्बेकार शतरंज खिलाड़ी के तौर पर मेरा अनुभव भी इससे कुछ बहुत अलग नहीं था। आठ बरस की उम्र से मैंने इस खेल में अपनी बिसात जमानी शुरू की, और कुछ सालों बाद मैं एक नियमित टूर्नामैण्ट खिलाड़ी हो चली थी। मैं एक ऐसे स्कूल गई जिसे बड़ी कुशलतापूर्वक एक के बाद एक बोर्ड परीक्षाओं के टॉपर पैदा करने में महारत हासिल थी। इसी बात पर उसकी शोहरत टिकी थी। छुट्टी की मेरी हर अर्जी के साथ प्राचार्य से बार–बार दोहराया गया मेरा निवेदन होता कि वे मेरी अर्जी मंजूर करें, तथा मुझे यात्रा करने और खेलने की अनुमति दें।

ऐसा नहीं है कि स्कूल अपनी खेल प्रतिभाओं का मोल नहीं समझते। बात बस यह है कि खेल स्कूल की वरीयता सूची में काफी नीचे आते हैं। जब तक किसी खिलाड़ी के कारनामे समाचार पत्रों में बड़े–बड़े अक्षरों में नहीं छपते, कम ही आशा रहती है कि उसे गम्भीरता से लिया जाएगा। नतीजतन, खिलाड़ी को अपना पहला ब्रेक (यानी बड़ी प्रतियोगिता में मैच खेलने का सबसे पहला अवसर) मिलने तक उसे बहुत कम समर्थन और प्रोत्साहन मिलता है, और पहला ब्रेक मिलने में बरसों भी लग सकते हैं।

स्कूल प्रबन्धन को इस बारे में आश्वस्त करने का कोई शर्तिया तरीका नहीं है कि आपका बच्चा, जिसके नाम कोई चैम्पियनशिप नहीं है, शहर के बाहर होने वाले टूर्नामैण्ट्स में खेलने का माद्दा रखता है। लेकिन खेल जगत की पृष्ठभूमि से थोड़ा–बहुत भी वाकिफ व्यक्ति जानता है कि चुनौतीपूर्ण राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में खेलने का अवसर मिलना एक चैम्पियन खिलाड़ी बनने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

इस सबके बावजूद, खिलाड़ी अगर ठान ले तो इस हठी स्कूली व्यवस्था में भी अपने लिए एक राह बनाई जा सकती है। मेरी माँ का हर बार समाचार पत्रों की कतरनें या टूर्नामैण्ट के परिपत्र लेकर स्कूली प्रशासन से मिलते रहना अन्ततः रंग लाया, और मुझे हाजिरी से सम्बन्धित ढील मिलने लगी।

हाँ, मेरे लिए अलग से विशेष कक्षाएँ लगाने या परीक्षा रखने का तो कोई सवाल ही नहीं था। मैं एक महीने लम्बे खेल–दौरे से लौटकर आती और आते ही नोट्स के अम्बार से भिड़ जाती, जबकि कक्षा के मेरे बाकी साथी मुझसे आगे निकल चुके होते। मेरे अनिश्चित कार्यक्रम को देखते हुए ट्यूशन का विकल्प सम्भव नहीं था। 10 वीं कक्षा के अन्तिम कुछ महीने ही थे जब मैं घर पर टिकी रही और एक प्राइवेट ट्यूटर से गणित पढ़ने लगी।

अनुभव से सबक लेते हुए मेरे माता–पिता ने मेरा दाखिला एक प्रगतिशील अन्तर्राष्ट्रीय स्कूल की 11 वीं कक्षा में कराया, और इस तरह मैं केन्द्रीय बोर्ड के बन्धन से मुक्त हुई। यहाँ पढ़ाई एक लचीले कार्यक्रम के हिसाब से होती थी, और हर क्लास में जो चर्चाएँ होती थीं, उनका पिछली कक्षा में हुई पढ़ाई से कोई नाता नहीं होता था – यह व्यवस्था मेरे लिए एकदम मुफीद थी।

मेरा यह नया स्कूल अन्धकार–युग से बाहर निकल चुका था। मेरे पास अपना काम ई–मेल से भेजने का विकल्प था और मैं अपनी घुमक्कड़ी के दौरान भी सम्पर्क में बनी रह सकती थी। स्कूल के प्रमुख बहुत ही समझदार व्यक्ति थे जिन्होंने न सिर्फ मेरा वार्षिक शुल्क माफ कर दिया बल्कि हाजिरी की अनिवार्यता से भी मुझे मुक्त किया। खेलने के लिए तो मैं पूरी तरह से आजाद थी। लेकिन अपने कुछ बेहतरीन अध्यापकों के प्रति मेरी जवाबदेही भी थी क्योंकि वे मुझसे पढ़ाई में भी उतनी ही मेहनत की अपेक्षा रखते थे।

मेरे कुछ मित्र हैं जो इस बात से सहमति नहीं रखना चाहेंगे, लेकिन शतरंज के खिलाड़ियों के बारे में आमतौर पर यही सोचा जाता है कि वे बहुत बुद्धिमान होंगे। नतीजतन, हम शतरंज के खिलाड़ी तो मूढ़ विद्यार्थी

बनकर भी अपना पीछा नहीं छुड़ा सकते। यह खेल खिलाड़ियों को इतना सक्षम तो बना ही देता है कि वे अपनी पढ़ाई से निपट सकें। गणित से इसका कोई सीधा सम्बन्ध हो या न हो, लेकिन इससे बच्चे की एकाग्रता, याददाश्त और तर्कशक्ति में दस गुना बेहतरी तो आ ही जाती है।

मैं दावे के साथ तो नहीं कह सकती कि शारीरिक खेलों का पढ़ाई और परिणामों पर कैसा–क्या असर पड़ता है लेकिन इतना तो मैं कह सकती हूँ कि किसी भी प्रकार की खेल–गतिविधि एक ऐसा हरफनमौला व्यक्तित्व बनने में सहायक होती है, जो दुनिया में आगे बढ़ने के लिए निरे 90 प्रतिशत के मुकाबले अधिक उपयोगी होता है। अलग–अलग स्थानों पर जाकर उस वैश्विक समुदाय का हिस्सा होना जो वह खेल खेलने के लिए एकत्र होता है जिसे वह सामूहिक रूप से प्यार करता है, एक ऐसा अनुभव है जिसे आँका–तोला नहीं जा सकता।

और कुछ नहीं तो बच्चों को कम से कम मनोरंजन के तौर पर कोई खेल खेलना चाहिए। इससे उन्हें यह बात समझ में आएगी कि परीक्षाओं से आगे भी एक दुनिया है। जो लोग शौकिया खेलने के स्तर से आगे जाते हैं, वे यह भी सीखते हैं कि प्रतिस्पर्धा के माहौल में मिलने वाली ऊँच–नीच का सामना सहज रूप से कैसे किया जाए। यह एक ऐसी खूबी है जो किसी भी अकादमिक पाठ्यचर्या से सीखने को नहीं मिलती।

इसी बीच, शतरंज खेलने वाले मेरे बहुत से मित्र, स्कूल छोड़कर खेल के अध्ययन को अपना समय समर्पित करने लगे थे। लेकिन मैं तो स्कूल में बनी रही क्योंकि मेरे परिवार में अच्छी शिक्षा एक ऐसी चीज मानी जाती थी जिस पर कभी कोई समझौता नहीं हो सकता था। हाँ, इसकी कीमत मुझे जरूर चुकानी पड़ी क्योंकि इसके चलते मैं पूरी तरह से किसी एक जगह पर नहीं टिकी रह पाती थी।

सैलानियों वाली मेरी जीवनशैली के सबसे बड़े प्रभावों में से एक प्रभाव यह था कि मेरे व्यक्तिगत सम्बन्धों में समय का खालीपन ही रहा। कक्षा 7 से कक्षा 12 तक के सालों में आप अक्सर ताउम्र चलने वाली दोस्तियाँ बनाते हैं, लेकिन मेरे इस स्कूली दौर से यह प्रसंग गायब ही रहा। मैं अगर बास्केटबॉल या हॉकी की खिलाड़ी रही होती तो जरूर अपने साथी खिलाड़ियों से दोस्ती रख पाती। लेकिन शतरंज बहुत अलग खेल था।

व्यक्तिगत खेल मूलतः एकाकी होते हैं। अपने सहयात्री और साथ प्रशिक्षण लेने वाले अन्य खिलाड़ियों के साथ अच्छे रिश्ते बनाए तो जा सकते हैं लेकिन यहाँ अपना रक्षा कवच पूरी तरह से गिरा देना आपके लिए सम्भव नहीं होता। यहाँ प्रत्येक मित्र में एक प्रतिद्वन्द्वी भी होता है, और अपनी सबसे अच्छी दोस्त से चैम्पियनशिप हार या जीत जाने से ज्यादा पेंचदार कोई और अहसास नहीं होता।

स्कूल में एक व्यक्तिगत खिलाड़ी होना बन्धनकारी भी हो सकता है और मुक्तिदायक भी । निर्भर करता है कि आप इसे किस दृष्टि से देखते हैं। स्कूल की फुटबॉल या बास्केटबॉल टीम के मुकाबले, व्यक्तिगत खिलाड़ी को खेलने के लिए जाने की अनुमति लेना हो तो तमाम किस्म की अनुमतियाँ पाने के लिए काफी कड़ी मशक्कत करनी पड़ती है। शायद ही कोई स्कूल होगा जो शतरंज जैसे खेलों के लिए निशुल्क कोचिंग का प्रबन्ध करता हो। और आप कल्पना भी नहीं कर सकते कि यह कितना संसाधन–सघन खेल है। लेकिन अन्त में खिलाड़ी अपनी सब उपलब्धियों और भविष्य के मौकों को बस अपने लिए रख सकता है, उन पर बस उसी का दावा रहता है।

खेल की प्रकृति स्कूल के बाद आने वाले जीवन पर भी बड़ा असर डालती है। मैं पाती हूँ कि अकेले काम करना मुझे अच्छा लगता है। मैं अपनी सारी जिम्मेदारी भी और जोखिम भी उठाने को तैयार रहती हूँ, जबकि टीम–खिलाड़ी शायद अपने सहकर्मियों के साथ तालमेल बिठाकर ही बेहतर काम कर पाते हों। इनमें से कौन सा तरीका कामयाब होगा, यह तो इस बात पर निर्भर

करेगा कि आपके काम करने की जगह, टीमवर्क यानी सामूहिक काम के ज्यादा अनुकूल है या फिर व्यक्तिगत रचनाधर्मिता के।

मुझे इस बात की खुशी है कि खेल पाने के लिए आवश्यक तमाम तरह की बाजीगरी के बावजूद मेरे घरवालों ने मुझे अपनी पढ़ाई छोड़ने की अनुमति नहीं दी। मैं ऐसे कई खिलाड़ियों को जानती हूँ जिन्होंने अपने खेल में तो शानदार सफलता हासिल की है, लेकिन वे खेल के बाहर किसी विषय पर वार्तालाप नहीं कर सकते। लोग अपनी प्राथमिकताओं के हिसाब से अपने विकल्प चुनते हैं, लेकिन मेरे विचार से जीवन इतना सम्पन्न और सम्भावनाओं से लबरेज है कि उसे किसी एक ही पहलू तक सीमित नहीं किया जा सकता।

पीछे मुड़कर देखने पर मुझे नहीं लगता कि मेरे स्कूल ने मेरे शतरंज करिअर को जितना समर्थन दिया, वह उससे ज्यादा कुछ और कर सकता था। सब संस्थाओं के पास इतने साधन नहीं होते कि वे प्रतिभाशाली खिलाड़ियों के लिए कोई कोष इत्यादि बना सकें, हालाँकि वह एक सपना जरूर होता है। मेरे खेल के अभ्यास के लिए मुझे अपने स्कूल परिसर में उत्तम क्वालिटी के मैदान या सुविधाओं की जरूरत बिल्कुल नहीं थी। कभी–कभार किसी अध्यापक के हौसला बढ़ाने वाले दो बोल सुनने, लम्बे समय बाद मुझे देखने वाले मेरे दोस्तों के चेहरों पर मुस्कान देखने और मेरे विदेशी दौरों को लेकर उनके जिज्ञासा भरे सवाल सुनने के अलावा मुझे कुछ और दरकार न था! और अधिकतर, यह सब तो मुझे मिल ही गया!

कृतिका नाडिग *महिला ग्रैण्ड मास्टर और सब–जूनियर, जूनियर तथा सीनियर महिला वर्गों की राष्ट्रीय चैम्पियन हैं। वे महिलाओं की सीनियर कैटेगरी में एशियन जोनल चौम्पियन भी हैं। कई अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया है, जिनमें अन्तिम चैम्पियनशिप रही 2010 में अंताक्या, तुर्की में हुई विश्व महिला चैम्पियनशिप।*